कामायनी : समन्वयवादी दर्शन का रूपक

शिल्पी यादव*

छायावाद के प्रमुख स्तम्भ श्री जयशंकर प्रसाद किसी परिचय का मोहताज नहीं है जयशंकर प्रसाद जी का नाम भारतीय साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है वे श्रेष्ठ कथाकार एवं नाटककार तो थे ही साथ ही साथ महान कवि भी थे। कथा–शिल्पी एवं महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म, काशी के भक्ति प्रधान सुंघनी साहु के माहेश्वर कुल में, साहु देवी प्रसाद जी के छोटे पुत्र के रूप में माघ, शुक्ल, दशमी–विक्रम संवत् 1946 अर्थात सन् 1889 में हुआ था। सबसे पहले इन्होने कविताएं लिखी जिनमें 1918 में चित्रधार 1925 में आंसू, 1927 में झरना, 1935 लहर, तथा अगले वर्ष 1936 कामायनी प्रकाशित हुई। 'कामायनी' के 'मनु', 'श्रद्धा', 'मानव' तथा 'इड़ा' मानव जीवन के विकास के सोपान हैं। भारत के प्रधान छः दर्शन में जो केन्द्रीय तत्व है वह है समन्वयवाद। पूर्व वैदिक समाजो से लेकर ज्ञात इतिहास काल–खण्ड तक हमारे समाजों ने जिन स्थितियों को जिया और उनसे जो निष्कर्ष निकाले, उनका सारतत्व है समन्वयवाद।

'कामायनी' की काव्य संरचना में छन्दों की नवीनता, शिल्पों की नयी स्थिति और रस–निष्पत्ति और रस–विपर्यय का निरन्तर ध्यान दिया है 'कामायनी' नायिका–प्रधान प्रबन्धकाव्य है।;'कामायनी' की कथावस्तु में मनु नायक के रूप खरा नही उतर सकता था। वह व्यवस्थापक है, वह दार्शनिक है।, वक युग–द्रष्टा भी है। किन्तु इन सबके बावजूद नैतिकता से कोसो दूर है।

कवि के ही शब्दो में ''यह जलन नही सह सकता मै
चाहिए मुझे मेरा ममत्व।
इस पंचभूति की रचना में
मै स्मरण करूँ– बन एक तत्व।।''[1]

देव जाति का विकास जब चरम पर पहुँचा, समाज के विभिन्न वर्गो की खाई जब बहुत ही बढ़ गयी और उन पर सत्ता ने जब नियन्त्रण खो दिया तो प्रकृति की अनिवार्य प्रतिक्रिया स्वभाविक थी जो जल–प्रलय के रूप में आयी। अधिनायक मनु ने असहाय होकर अपनी सभ्यता और वैभव की विनाश को जल–प्रलय में डूबते हुए देखा। यह नियत चक्र था या प्रकृति की उदारता कि वह स्वयं बच गया । हिमालय की विजन नीरवता में जल–प्लावन की दारण स्मृतियों के साथ वह जीवन के नयें यथार्थ से जूझ रहा था। जीवन अपराजेय होता है, प्रलय के बाद फिर नयें निमार्ण में लग गया। प्रसाद जी रूपकों और बिम्बों के बहानें सें मानव–सभ्यता के बड़े से बड़े सिद्धात और तर्क की कविता की भूमि को साकार कर देते हैं। विनाश के बाद सृजन होता है, तो अधिनायक मनु नयी सृष्टि को व्यवहारिक रूप देने में लीन हुआ। 'आशा' सर्ग में प्रसाद जी लिखते हैं,–

''वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का ।
आज लगा हंसने फिर से ।
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से ।''[2]

जल प्लावन के आवेग के बाद उसका अवसान आया। प्रकृति के बडे कारक जो अभी सभ्यता के विकास में तल्लीन थे, अब नयी सृष्टि के निर्माण में तत्पर हो उठे। भारतीय– मिथक के साथ ही विश्व के और मिथकों में मनु–श्रद्धा की यह कहानी कुछ परिवर्तनों के साथ फैली हुई हैं। डॉ0 रामविलास

* प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़

शर्मा के अनुसार–'ऋगुवेद' का जितना गहरा अध्ययन प्रसाद जी का था, उतना आधुनिक हिन्दी कवियो में किसी का नहीं है। 'आशा'सर्ग में अनेक छन्द जैसे– 'ऋगुवेद' से मत्रों के काव्यानुवाद लगते हैं। जैसे–

''विश्वदेव,सविता या उषा सोम, मरूत, चंचल, अवमान
वरूण आदि सब घूम रहें हैं जिसके शायन मे अम्लान?''[3]

हिमालय की उस प्रशान्त और निरजव नीरवता में मनु जीवन के उपकरणों को एकत्रित करने में लग गया। जल – प्लावन की यातना का दबाव उसकी चेतना पर था ही अर्थात् उसका अधिनायक रूप नैतिकता कें प्रकाश में छिप गया था। नयी सृष्टि के प्रारम्भ में कवि के शब्दों में मनु की दशा कुछ इस तरह हैं–

''थी अनंत की गोद सदृश जो विस्तृत गुहा वहां रमणीय,
उसमें मनु ने स्थान बनाया सुंदर ,स्वच्छ और वरणीय।''[4]

अभी जिस प्रकृति ने मनु की प्रजाओ का, उसके राज्य वैभव का विनाश करके रख दिया था–अब वही प्रकृति और उसके उपकरण मनु को बहुत प्रेरक और लुभावने लगने लगे। हँसी इस पर आती है कि जल–प्लावन से पहले मनु ने प्रजाओं के हित में जिन बिन्दुओं पर कभी नहीं सोचा था –अब बदली स्थितियों में वही उसकी प्राथमिता बन गई।जैसे –

''अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ, कहीं दूर रख आते थे,
होगा इससे तृप्त अपरिचित, समझ सहज सुख पाते थे।''[5]

राजसत्ता की निरकुशता और निर्ममता,बराबर विश्व के दार्शनिकों और लेखकों के निशाने पर रही है। एक तर्क तक यह भी हो सकता है कि दूसरें विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से पहलें की बजाय यदि 'कामायनी' का रचनाकाल इस महायुद्ध के समय या उसके बाद होता तो प्रसाद के दृष्टिकोणों में परिवर्तन अनिवार्य था । लेकिन सटीक विश्लेषण तो इतिहास के आधार पर ही होगा।

'कामायनी' के 'श्रद्धा–सर्ग' में श्रद्धा के कौतूहल जनक प्रश्न के साथ ही मनु और श्रद्धा में लम्बा संवाद प्ररम्भ हो जाता है। 'श्रद्धा–सर्ग' की पृथक विशेषता यह भी है। कि कवि ने और किसी सर्ग में उस छन्द को नहीं दोहराया है जिसमें यह सर्ग लिखा गया है। अधिक गम्भीरता से विचार करें तो इस छन्द पर संस्कृत काव्य परम्परा की स्पष्ट छाया है। प्रसाद से पहले 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' मे भी यही स्थिति है। इस सर्ग का कथा–विस्तार बहुत ही छोटा है किन्तु प्रसाद जी का काव्य–कौशल निखर कर चरम पर पहुॅच गया है। कहना नही होगा की प्रसाद जी शैव थे किन्तु बौद्ध–दर्शन का करूणावाद उनकी चेतना का प्रमुख तत्व था । रूपकों, बिम्बों , उपमाओं और शिल्पों की विविधता के साथ मनु और श्रद्धा का संवाद, लगता है। कि पूरा विश्व मानवता का संवाद है।

फिर भी श्रद्धा के उकसाने के बाद भी मनु प्रलय को दुःस्वप्नों से चाह कर भी उभर नही पाता है।

श्रद्धा कह रही है–

''विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान।
यही दुख–सुख, विकास का सत्य
यही भूमि का मधुमय दान।।''[6]

सभ्यता– विकास के संघर्षो में जो सकरात्मक पक्ष है, मानव जाति के जो सकारात्मक निष्कर्ष हैं– कवि ने उनके समन्वय की सार्थक वकालत की है। समन्वय स्वयं प्रकृति का सबसें बड़ा स्वभाव है।

मानव–चेतना के जो उदात्त –तत्व अनदेखे और अन पहचानें पड़े हुये हैं। प्रसाद जी ने प्रयोक्ताओं को उन्हें आचरण में ढालने की सलाह दी है। स्वयं कवि के शब्दों में –

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल विखरें हैं, हों निरूपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।''[7]

'कामायनी' के 'काम' सर्ग में प्रसाद जी ने रूपकों और बिम्बों के बहाने से जीवन के प्रति अनुराग और आकर्षण को चित्रित किया है। जल–प्रलय के बाद उसके मलवे पर नई सृष्टि की तड़प में ज्ञान पूर्ववत् था किन्तु अब उसी ज्ञान कों नये संस्कारों में ढालना था। त्याग, तपस्या, साधना और अनुशासन के संस्कारों में । संम्भवतः कवि ने बहुत भावुक होकर लिखा होगा–

''सब कहतें हैं खोलो खोलो,
छवि देखूँगा जीवन धन की,
आवरण स्वयं बनते जाते
हैं भीड़ लग रही दर्शन की।''[8]

नये सृजन के लिये श्रद्धा द्वारा बार–बार उकसाये जाने पर मनु पूराने संस्कार हटते नहीं है और वह बार–बार जल–प्रलय के भीषण अनुभवों में डूबता रहता है। मनु के व्यक्तित्व की उश्रृखलता, उसकी अधिनायकवादी सोच, बार–बार उसको भटकाते हैं। फिर भी श्रद्धा का प्रयास चलता रहा और अन्ततः कर्महीन, अधिनायक, नई रचना के लिए तत्पर हो ही गया –

''उस लता–कुंज की झिल–मिल से
हेमाभ रश्मि थी खेल रही,
देवों के सोम सुधा रस की
मनु के हाथें में बेल रही।''[9]

'कामायनी' का 'वासना' सर्ग विश्लेषणपरक और मनोवैज्ञानिक है। मनु की चेतना में नकारात्मक और सकारात्मक भावों की वरजोरी और अपरदन बराबर चलता रहता है। 'कामायनी' या श्रद्धा की लगातार प्रयासों के फलस्वरूप अधिनायक मनु नये सृजन के लिए तत्पर होता है। अर्थात वह जल–प्रलय की भीषणता से उबरने लगा और जीवन के नये यथार्तो समझने में लग गया । प्रसाद जी लिखतें है –

''चलों तो इस कौमुदी में देख आवें आज,
प्रकृति का यह स्वप्न शासन, साधना का राज।''[10]

'लज्जा' सर्ग 'कामायनी' के कुछ महत्पूर्ण सर्गों मे एक है। जिसमें काव्य–रूपकों, शिल्प की नयी भंगिमाओं, किन्तु पराम्परिक काव्य– मुहावरों का निर्वाह करते हुए कवि ने नयी–नयी उद्भावनाएं की है। नाट्य–भाषा के मुहावरों में कहूँ तों श्रद्धा के लम्बे स्वागत के बाद मनु का उससे संवाद प्रारम्भ होता है। श्रद्धा जैसे अपने व्यक्तित्व का ईमानदार और पारदर्शी आकलन मनु से करती रहती है। जैसे–

''इस अर्पण में कुछ और नहीं,
केवल उत्सर्ग छलकता है।
मै दे दूँ औरन फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।।''[11]

'कर्म' सर्ग में पहली बार प्रसाद जी स्पष्ट रूप में शैव–दर्शन की उद्‌भवना कविता की भूमि पर करते हैं। जैसे कि इस शोधपरक आलेख के प्रारम्भ में मैनें संकेत किया है कि प्रसाद की चेतना में भारतीय अद्वैत का शैव– दर्शन और बौद्ध– दर्शन का करूणावाद मूल–रूप में मिला हुआ है। शिव भारतीय मिथक का सर्वाधिक सम्माननीय और सर्वाधिक निरपेक्ष देव–विग्रह है।

कवि ने कितना डूबकर लिखा होगा–

''नील गरल से भरा हुआ
यह चन्द्र कपाल लियें हो,।
इन्हीं निमीलित ताराओं में
कितनी शान्ति पिये हो।।''[12]

इसके बाद भी श्रद्धा के लगातार संपर्क के बाद भी मनु का तानाशाह मन जैसे बदलना ही नही चाह रहा । लगता है कि कवि ने मनु के चरित्र में सत्ता के चरित्र को आरोपित कर दिया है। मनु मिथक का प्रतीक होने के साथ ही प्रसाद के समय के तत्वकालीन राजनीतिक खलनायकों का प्रतीक भी है। उसके लगभग अपरिवर्तनीय व्यक्तित्व को जैसे तमाचा भारती हुई श्रद्धा कहती है –

''औरों को हॅसते देखो मनु
हंसों और सुख पाओं।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओं।।''[13]

'मुक्तिबोध' की बहुत चर्चित कृति 'कामायनीः एक पुनार्विचार' में प्रसाद के इसी ढुलमुल विश्लेषण की तीखी आलोचना है। किन्तु यह भी सच है के 'मुक्तिबोध' के और भी विश्लेषणों को स्वीकार नही किया जा सकता । किन्तु 'कामायनी' के मूल्याकंन में 'मुक्तिबोध' की इस कृति का महत्व असंदिग्ध है।

'ईर्ष्या' सर्ग में श्रद्धा के मानसिक परिवर्तन के साथ मनु का मानसिक तनाव भी बढता चला गया। अर्थात वह अपने स्वभाव का वर्चस्व, सामंजस्य में नही बदल पाया। प्रसाद ने उसके इस अन्तर्विरोध का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। जैसें–

''यह जलन नही सह सकता मैं।
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पंचभूत की रचना में
मै रमण करू बन एक तत्व।।''[14]

'मन की परवशता महादुःख' की प्रमेय श्रद्धा को सौपकर मनु वहॉ से अन्तहीन यात्रा पर चला गया।

'इड़ा' स्पष्ट रूप में तर्क की प्रतीत है। इस सर्ग में कवि ने सैद्धांतिक और दार्शनिक रुपकों से अपनी बात कही है। 'प्रसाद' पर अपनी आलोचना में 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' ने 'देखे मैंने वे शैलश्रृंश' का उल्लेख करते हुए प्रसाद की आलोचना की है। 'कामायनी' के कथानक में इसी सर्ग में मनु का इड़ा से परिचय होता है। इसके कुछ पद मनु की स्वागत शैली में हैं। वेदों में प्रसिद्ध सरस्वती नदी के बहाने से प्रसाद जी ने मनु के आगत जीवन का चित्र खींचा है। इस सर्ग के अन्तिम पदों पर उपनिषद के रुपकों और गीता की तर्क– शैली का स्पष्ट प्रभाव है।

प्राचीनकाल से ही भारतीय मनोविज्ञान में 'स्वप्न' की स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सिंगमैण्ड फ्रायड जैसा मनोवैज्ञानिक जिसको 'अवचेतन' कहता है, भारतीय चिन्तन में वह 'अधिचेतना' है।

इस सर्ग में श्रद्धा और उसके नवजात शिशु की क्रीड़ा का मनोहारी वर्णन है। किन्तु मनु की अनुपस्थिति में श्रद्धा के मनोविश्लेषण का सौन्दर्य भी कम नहीं है–

''इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की सन्ध्या।
कामायानी! तू हृदय कड़ा कर धीरे–धीरे सब सहले।।''[15]

उधर सारस्वत प्रदेश में इड़ा के समर्थन में मनु समाज के नव निर्माण में लग गया। किन्तु उसके व्यक्तित्व को घोर नकारात्मक तत्व एक बार फिर प्रबल हो उठे और इड़ा की प्रजा उसके प्रति विद्रोह कर उठे। उधर देव शक्तियों का प्रकोप भी निर्णायक रुप में सक्रिय हो उठा। अन्ततः इड़ा चाह कर भी सामंजस्य नहीं बैठा पायी।

आलोचक डा0 नामवर सिंह जी ने 'संघर्ष' सर्ग की भाषा को 'कामायनी' की सर्वोच्च ओजस्वी भाषा माना है। मनु के वर्चस्वशील मनोविज्ञान पर इड़ा की सबसे गम्भीर टिप्पणी कवि के शब्दों में–

''आह प्रजापति यह न हुआ है, कभी न होगा,
निर्वाधित अधिकार आज तक किसने भोगा?''[16]

अन्ततः उसकी उद्दाम उश्रृंखलता को देव शक्तियों के सामने पराजित होना पड़ा। इस सर्ग में जैसे कवि ने अपनी उपासना को ही परिभाषित कर दिया है। 'निर्वेद' सर्ग में धधकती वेदी के समीप मनु मूर्छित होकर पड़ा है। एक दुर्लभ संयोग के रुप में श्रद्धा अपने बेटे के साथ मनु को उस दुर्वस्था में देखकर चौंक जाती है। मनु की भी आंखें खुली और वह दोनों को देखकर भावुक हो गया। इसी सर्ग में 'कामायनी' का एकमात्र गीत है जो श्रद्धा के व्यक्तित्व को पूरी तरह साकार कर देता है।

जैसे–

''जहां मरु ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती
उन्हीं जीवन घाटियों को,
मैं सरस बरसात रे मन!''[17]

कुछ समय के लिए ही सही अपने परिवार से मिलने के साथ मनु में भावुक परिवर्तन आये। वह श्रद्धा के प्रति की गयी अतियों को भी स्वीकार करता है जैसे–

सुखी रहे, सब सुखी रहें बस
छोड़ो मुझ अपराधी को,।
श्रद्धा देख रही चुप मन के
भीतर उठती ऑंधी को।।''[18]

किन्तु इस सर्ग के अन्त में मनु एक बार फिर अज्ञात की ओर प्रस्थान कर गया। अगले सर्ग दर्शन में कवि की मेघा अपने सर्वोच्च रुप में निखरी है। मनु की अज्ञात अनुपस्थिति में श्रद्धा और इड़ा के अन्तर्विरोध भी अपने तर्कों से सामने आते हैं किन्तु कवि की दार्शनिक पदावली सबको ठगे रहती है।

श्रद्धा अपने बेटे को दुलारते हुए कहती है–

''हे सौम्य! इड़ा का सुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार।''[19]

सर्ग के अन्त में प्रसाद जी निर्विकल्प शिवत्व को और उसकी प्रभुता को एक बार फिर प्रणाम करते हैं। 'संघर्ष' सर्ग में जीवन–संघर्षों की परिणति का मर्म छिपा है। 'मुक्तिबोध' के हवाले से कहूँ तो प्रसाद जी मानव– शुभता का एक अलग स्वप्नलोक रचते हैं। शिव आनन्द स्वरुप है। 'आदिशंकराचार्य'

के शब्दों में ''आनन्दमानन्द वने वसन्तं'' में शिवत्व के अनुग्रह के चरम आनन्द में है। अन्तिम सर्ग 'आनन्द' में कथानक के चारों यात्री शिवत्व के सर्वोच्च स्वरुप को निहारने के लिए कैलाश शिखर की ओर बढ़ते हैं जो शैव–दर्शन में (अद्वैत दर्शन) चेतना के मंगल का सर्वोच्च रुप है। अन्ततः कैलाश की छवि का वर्णन करने में 'कामायनी' की रचना सम्पन्न हो जाती है।

''समरस से जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बनाता है
चेतनता एक विलषती
आनन्द अखण्ड घना था।''[20]

जयशंकर प्रसाद के दार्शनिक चेतना का सर्वोत्ताम उदाहरण उनकी कृति 'कामायनी' में मिलता हैं। इन्होने समरसता का दर्शन स्वीकार करते हुए 'मनु' की कथा द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों में सामंजस्य पर जोर दिया। जयशंकर प्रसाद गहरे स्तर पर शैव दर्शन से प्रभावित थे। इन्होने समरसता के सिद्धान्त का प्रतिपादन 'श्रद्धा' एवं 'इड़ा' के संघर्ष समन्वय द्वारा किया हैं।

सन्दर्भ

1– 'कामायनी' (ईर्स्या सर्ग) पृष्ठ–118
2– 'कामायनी' (आशा सर्ग) पृष्ठ–23
3– 'कामायनी' (ईर्स्या सर्ग) पृष्ठ–25
4– 'कामायनी' (ईर्स्या सर्ग) पृष्ठ–29
5– 'कामायनी' (ईर्स्या सर्ग) पृष्ठ–30
6– 'कामायनी' (श्रद्धा सर्ग) पृष्ठ–46
7– 'कामायनी' (ईर्स्या सर्ग) पृष्ठ–50
8– 'कामायनी' (काम सर्ग) पृष्ठ–55
9– 'कामायनी' (काम सर्ग) पृष्ठ–62
10– 'कामायनी' (वासना सर्ग) पृष्ठ–68
11– 'कामायनी' (लज्जा सर्ग) पृष्ठ–80
12– 'कामायनी' (कर्म सर्ग) पृष्ठ–94
13– 'कामायनी' (कर्म सर्ग) पृष्ठ–101
14– 'कामायनी' (ईर्स्या सर्ग) पृष्ठ–118
15– 'कामायनी' (स्वप्न सर्ग) पृष्ठ–140
16– 'कामायनी' (संघर्ष सर्ग) पृष्ठ–151
17– 'कामायनी' (निर्वेद सर्ग) पृष्ठ–169
18– 'कामायनी' (निर्वेद सर्ग) पृष्ठ–178
19– 'कामायनी' (दर्शन सर्ग) पृष्ठ–188
20– 'कामायनी' (आनन्द सर्ग) पृष्ठ–20

●